1934C Feast on Death *Mratyu-Bhoj* (in Smarika)

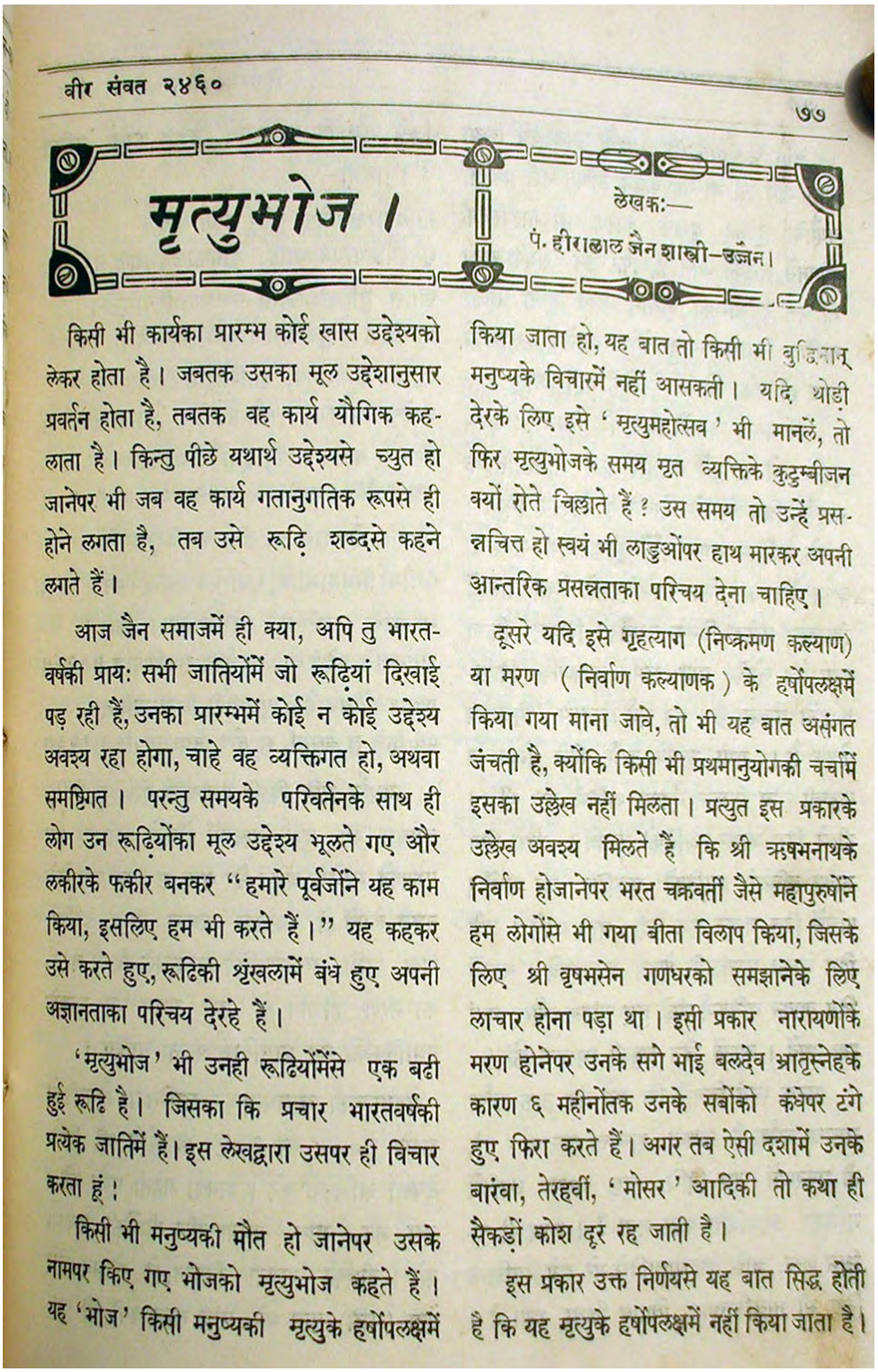

मृत्युभोज ।

लेखक:—
पं. हीरालाल जैन शास्त्री—उज्जैन।

किसी भी कार्यका प्रारम्भ कोई खास उद्देश्यको लेकर होता है। जबतक उसका मूल उद्देशानुसार प्रवर्तन होता है, तबतक वह कार्य यौगिक कहलाता है। किन्तु पीछे यथार्थ उद्देश्यसे च्युत हो जानेपर भी जब वह कार्य गतानुगतिक रूपसे ही होने लगता है, तब उसे रूढ़ि शब्दसे कहने लगते हैं।

आज जैन समाजमें ही क्या, अपि तु भारतवर्षकी प्रायः सभी जातियोंमें जो रूढ़ियां दिखाई पड़ रही हैं, उनका प्रारम्भमें कोई न कोई उद्देश्य अवश्य रहा होगा, चाहे वह व्यक्तिगत हो, अथवा समष्टिगत। परन्तु समयके परिवर्तनके साथ ही लोग उन रूढ़ियोंका मूल उद्देश्य भूलते गए और लकीरके फकीर बनकर "हमारे पूर्वजोंने यह काम किया, इसलिए हम भी करते हैं।" यह कहकर उसे करते हुए, रूढिकी शृंखलामें बंधे हुए अपनी अज्ञानताका परिचय देरहे हैं।

'मृत्युभोज' भी उनही रूढियोंमेंसे एक बढी हुई रूढि है। जिसका कि प्रचार भारतवर्षकी प्रत्येक जातिमें हैं। इस लेखद्वारा उसपर ही विचार करता हूं!

किसी भी मनुष्यकी मौत हो जानेपर उसके नामपर किए गए भोजको मृत्युभोज कहते हैं। यह 'भोज' किसी मनुष्यकी मृत्युके हर्षोपलक्षमें किया जाता हो, यह बात तो किसी भी बुद्धिमान् मनुष्यके विचारमें नहीं आसकती। यदि थोड़ी देरके लिए इसे 'मृत्युमहोत्सव' भी मानलें, तो फिर मृत्युभोजके समय मृत व्यक्तिके कुटुम्बीजन क्यों रोते चिल्लाते हैं? उस समय तो उन्हें प्रसन्नचित्त हो स्वयं भी लाडुओंपर हाथ मारकर अपनी आन्तरिक प्रसन्नताका परिचय देना चाहिए।

दूसरे यदि इसे गृहत्याग (निष्क्रमण कल्याण) या मरण (निर्वाण कल्याणक) के हर्षोपलक्षमें किया गया माना जावे, तो भी यह बात असंगत जंचती है, क्योंकि किसी भी प्रथमानुयोगकी चर्चामें इसका उल्लेख नहीं मिलता। प्रत्युत इस प्रकारके उल्लेख अवश्य मिलते हैं कि श्री ऋषभनाथके निर्वाण होजानेपर भरत चक्रवर्ती जैसे महापुरुषोंने हम लोगोंसे भी गया बीता विलाप किया, जिसके लिए श्री वृषभसेन गणधरको समझानेके लिए लाचार होना पड़ा था। इसी प्रकार नारायणोंके मरण होनेपर उनके सगे भाई बलदेव भ्रातृस्नेहके कारण ६ महीनोंतक उनके सबोंको कंधेपर टंगे हुए फिरा करते हैं। अगर तब ऐसी दशामें उनके बारंवा, तेरहवीं, 'मोसर' आदिकी तो कथा ही सैकड़ों कोश दूर रह जाती है।

इस प्रकार उक्त निर्णयसे यह बात सिद्ध होती है कि यह मृत्युके हर्षोपलक्षमें नहीं किया जाता है।

यदि मृत्युके दुःसह दुःखके उपलक्ष्यमें किया गया मानें, तो भी यह कथन उचित नहीं जंचता, क्योंकि दुःसह दुखके कारण तो गार्हस्थिक जीवनमें अनेकों आते हैं, फिर उन सबके साथ भी एक २ भोजका विधान लगा हुआ होना चाहिए, जिससे उन दुःखोंके सहनेकी सामर्थ्य प्रगट हो सके, सो भी देखनेमें नहीं आता।

इस प्रकार अनेकों विचारोंके निरन्तर हृदयमें उठते रहने पर मुझे ब्रह्मसूरि कृत प्रतिष्ठातिलक नामके त्रिवर्णाचारके देखनेका अवसर मिला। उसके अन्तिम अष्टम वर्षमें सूतकपातक सम्बन्धी वर्णन है। जहां कि मरण दिवससे लेकर बारहवें दिनतक, प्रत्येक दिनके कार्योंका विधान किया गया है। जोकि प्रायः सभी ब्राह्मणोंके क्रिया-कांडोंसे मिलता है। एवं सर्व प्रकारसे मिथ्यात्व पोषक है। यथा—मृत्युके दूसरे दिन स्त्रियां व कुटुम्बी लोग स्मशान जाकर अग्निमें दूध सींचे। तीसरे दिन जाकर अग्निको बुझावें। चौथे दिन जाकर हड्डियां आदिको एकत्रित कर आवें। पांचवें दिन जाकर एक वेदी बना आवें। छठे दिन जाकर पुष्पांजलि क्षेपण कर आवें। सातवें दिन जाकर बलिकर्म सीझे हुए चांवल वगैरह वहां रख आवें। आठवें दिन वृक्षकी स्थापना करें।

पाठक स्वयं विचारें कि क्या यह उक्त वर्णन सम्यक्त वर्धक है अथवा सम्यक्त कृन्तक? हां, तो प्रकरणमें दुष्ट तिथि, दुष्ट नक्षत्र आदिमें मरनेका प्रायश्चित्त कहा गया है। साथ ही दुःक्षिम शस्त्र, अग्नि, जलपातादिसे मरे हुये व्यक्तिके लिए भी प्रायश्चित्तका विधान किया गया है। जिसे पाठकोंके अवगमार्थ उद्धृत करना उचित है। तद्यथा—

तिथिवारर्क्षयोगेषु, दुष्टेषु मरणं यदि।
मृतस्योत्थापनं चादि, दीर्घकालमभूद्यदि ॥११३॥
आर्त्ति दुर्भिक्षशस्त्राग्नि-जलपातादिनामृतौ।
प्रायश्चित्तं तु पुत्राद्यैस्तदानीमिदमिष्यते ॥ ११८ ॥
महामंत्रं समाराध्य, शान्तिहोमं विधाय च।
अष्टोत्तरसहस्रेण, घटैरष्टशतेन वा ॥ ११९ ॥
जिनस्य स्नपनं कार्यं, पूजा च महतोऽथवा।
दशतीर्थानि वंद्यानि, नव वा सप्त पंच वा ॥१२०॥
गोदानं, क्षेत्रदानं च, तीर्थस्य विदुषामपि।
पंचानां मिथुनानां च, यथा स्वं वसनार्पणम्॥१२१॥
सहस्रस्य तदर्धस्य, तदर्धस्याथवा तदा।
शतस्यान्नं प्रदेयं वा, तदर्धस्य सधर्मिणाम् ॥१२२॥
अष्टादर्वाग्विधायैवं, पूजनीयो जिनोऽघजित्।
एवं कृते तु बंधुनां, स दोष उपशाम्यति ॥१२३॥

अर्थात् यदि किसी मनुष्यका मरण दुष्टतिथि, दुष्टवार, या दुष्ट नक्षत्रमें होजावे, अथवा मृत पुरुषको मरनेके बहुत देर बाद उठाकर जलानेके वास्ते लेगयें हो, अथवा अत्यन्त पीड़ा, दुर्भिक्ष, शस्त्र, अग्नि, जलपातादिके सम्बन्धसे किसी बन्धु-का मरण होजाय तो उस समय मृत पुरुषके पुत्रादिकको यह प्रायश्चित्त करना चाहिए।

महामन्त्रकी आराधना कर शान्तिपाठ होमादिको करके १००८ या १०८ कलशोंसे श्री जिन-देवका अभिषेक करे। अथवा महती पूजा करे। दश, नव, सात अथवा पांच तीर्थोंकी वन्दना करे। तीर्थको अथवा विद्वानोंको गोदान और क्षेत्र (भूमि) दान करे, पांच सात धर्मी स्त्री पुरु-

र्षोंके जोडोंको यथायोग्य वस्त्रादिक भेंट देवे। साथ ही एक हजारको, या पांचसौको, अढ़ाई सौको या सौको, अथवा पचास साधर्मी जनोंको आहार दान करे। इस प्रकार जिनभगवानकी पूजा करने व उक्त कार्यके करनेसे बंधु जनोंके ग्रहादि सम्बन्धी दोष उपशान्त होजाता है।

नोट—अन्तिम श्लोकके प्रथम चरण 'अष्टाद-वाग्विधीयैवं' का भाव मेरे समझमें नहीं आया! इतना स्पष्ट प्रतित होता है कि अमुक तिथिके पूर्व ही उक्त क्रिया कांड करडाले अन्यथा वह दोष दूर नहीं होगा।

इस उक्त कथनसे यह ध्वनित होता है कि उक्त परिस्थितिमें ब्राह्मणोंका अनुकरण करनेवाले क्रियाकांड-प्रधानी लोगोंने प्रायश्चित्त स्वरूप ही 'मृत्युभोज' का विधान किया था। हालांकि वह स्वयं मिथ्यात्व पोषक है, जैसा कि उसके पूर्वापर सम्बन्धको देखते हुए स्पष्ट प्रकट होता है। सर्व प्रथम यह प्रथा किसी एक देशीय जनतामें ही वैसी परिस्थितिवश प्रचलित हुई होगी। धीरे२ समयके परिवर्तनके साथ उसका प्रचार बढ़ा और लोग उसके उद्देश्यको भूलते गए।

उक्त बातपर गंभीर मनन करनेसे यह भी पता चलता है कि देखा-देखी लोगोंने अपनी मान कषायके वश इसे अंगिकार किया। जब अमुक व्यक्तिने यह किया तो हम भी इसे करेंगे, क्योंकि क्या हम छोटे हैं? जो उसने लोगोंके लाड़ खिलाए और मैं न खिलाऊं। यही कारण है कि आज भी अनेकों लोग इस निंद्य प्रथाके विरुद्ध होते हुए भी केवल लोक लाजसे--कि जब हम दूसरोंको उक्त अवसरपर लाड़ खाए बैठे हैं, तो बदला चुकाना अपना कर्त्तव्य समझकर खिलाया करते हैं।

आशा है, इस प्रथाके भक्त पाठकगण इसे पढ़कर यथार्थ परिस्थितिकी खोज करेंगे। और अनेको बर्बाद होते हुये घरोंको नष्ट होनेसे बचा-येंगे, उन दीन दुखी अनाथ बच्चोंको दरिद्रताके अगाध समुद्रमें ढकेलनेसे विश्राम लेंगे!

आजकल यद्यपि अनेकों स्थलोंपर इस दुष्ट प्रथामें बहुत कुछ सुधार होरहा है और ४० या ४५ वर्षके बाद ही मृत्यु भोजके करनेकी प्रेरणा की जारही है, परन्तु मेरे ध्यानसे तो लोगोंको इसकी यथार्थता समझकर इस घातक प्रथाका एकदम बन्द कर देना ही सर्व-श्रेष्ठ होगा।

सेठ—"मैं चोरीका माल कभी न रखूंगा जिसकी यह बकरी है उसीको वापिस कर दो।"

चोर—"मैंने उसे दी थी परन्तु उसने लेनेसे इन्कार कर दिया।"

सेठ—"ऐसी अवस्थामें तुम ही इसे रख सकते हो"

चोर—"धन्यवाद?"

जब सेठ घर पहुंचा तो उसने अपनी बकरी गायब पाई।

× × ×

"कोई नया समाचार?"

"कलसे आज "जिन्दगी" का एक दिन घट गया है"

× ×